www.abdpindia.net

ISSN 0974-8849

दार्शनिक त्रैमासिक

वर्ष-64 अंक-4 अक्टूबर-दिसम्बर, 2018

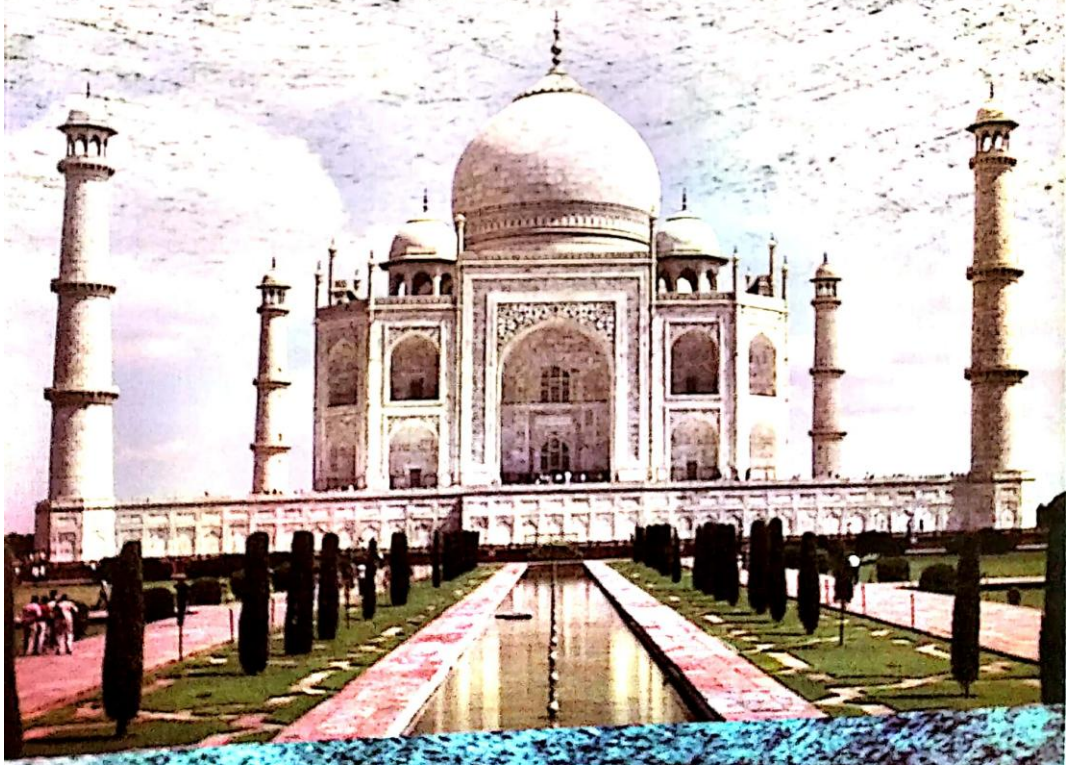

अखिल भारतीय दर्शन-परिषद्

दार्शनिक त्रैमासिक
वर्ष-64, अंक-4, अक्टूबर-दिसम्बर, 2018

ISSN: 0974-8849
अभिनिर्देशित

चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया में पुरूषार्थ की भूमिका

डॉ॰ सत्यनारायण देवलिया*

चरित्र निर्माण में पुरूषार्थ की भूमिका जानने से पहले नीतिशास्त्र के माध्यम से यदि हम चरित्र की अवधारणा को समझने का प्रयास करें तो प्रतीत होता है, कि चरित्र मनुष्य की अपनी मानसिक और नैतिक प्रकृति है, जिसके कारण वह दूसरे मनुष्य से भिन्न है।[1] विवेक बुद्धि मनुष्य की विशेषता है पर उसकी शारीरिक प्रकृति या मानसिक और नैतिक प्रकृति के कारण उसमें भेद है। प्रारम्भ में कुछ अंशों तक मनुष्य के कर्मों का निर्णायक उसकी जन्मजात प्रवृत्तियाँ होती है।। इस दौरान हम कभी उचित कर्म का और कभी अनुचित कर्म का संकल्प लेते हैं। पर जैसे-जैसे हमारी उन प्रवृत्तियों का बुद्धि द्वारा नियंत्रण और परिष्कार होता है और उचित या अनुचित संकल्प करने का अभ्यास बढ़ता है। विशेष ढंग की इच्छा के अभ्यास को और विचार प्रवृत्ति को मनुष्य की नैतिक और मानसिक प्रकृति कहा जाता है। अत: चरित्र का अर्थ हुआ संकल्प (इच्छा) का अभ्यास है।[2] चरित्रवान वह मनुष्य है जो अभ्यास पूर्वक अच्छा संकल्प करे और इसके विपरीत चरित्रहीन वह मनुष्य है जो अभ्यासपूर्वक बुरा या अनुचित संकल्प करे। संकल्प चरित्र को अभिव्यक्त करता है। संकल्प या उससे उत्पन्न आचरण का गहरा सम्बन्ध चरित्र से होता है। आचरण मनुष्य का ऐच्छिक या अभ्यास जन्य कर्म होता है। हम यह कह सकते हैं कि चरित्र अव्यक्त आचरण व्यक्त चरित्र है। इसीलिए चरित्र या आचरण से मनुष्य के व्यक्तित्व का पता लग जाता है।[3]

यह सत्य है कि जब एक विशिष्ट प्रकार का दृष्टिकोण आदत के रूप में आ जाता है तो वह चरित्र का अंग कहलाता है। और इसी को दृष्टिगत रखते हुए अरस्तु का कथन है कि 'सदगुण आदत है'। परन्तु हम चरित्र को

* जनरल फैलो (आई.सी.पी.आर.), दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ॰ हरीसिंह गौर वि.वि., सागर (म॰प्र॰)।